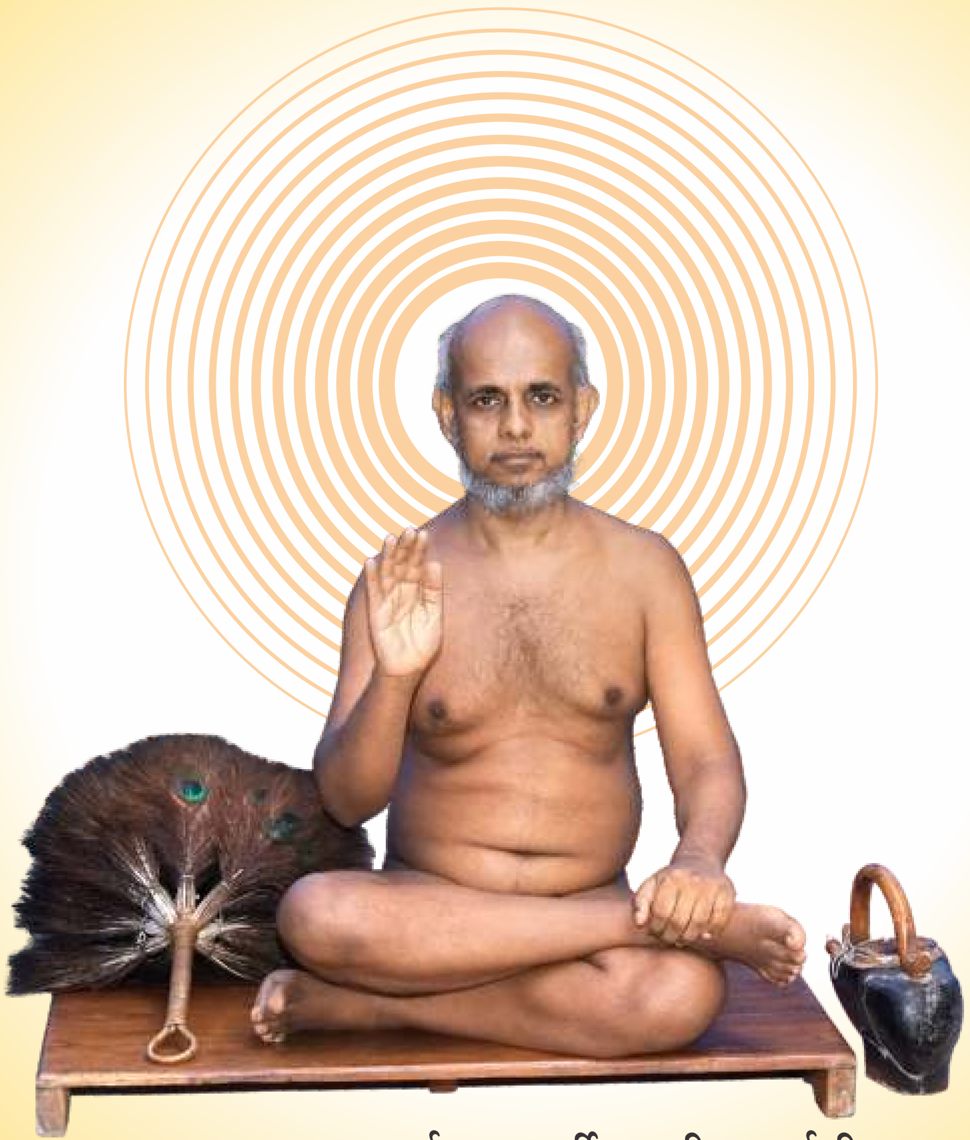

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

विशद एकीभाव स्तोत्र विधान

कृतिकार : परम पूज्य आचार्यश्री विशदसागर जी महाराज

प्राप्ति स्थान :
विशद साहित्य केन्द्र श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, कुआँ वाला,
जैनपुरी रेवाड़ी (हरियाणा)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

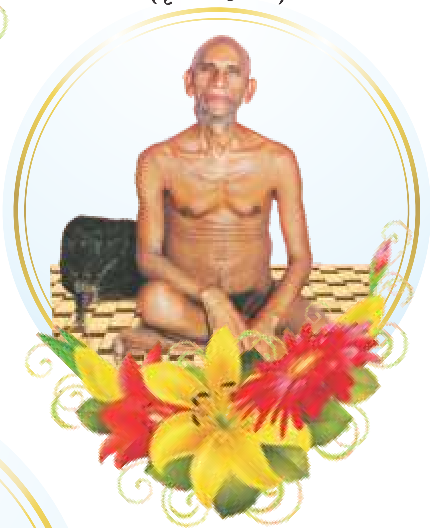

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

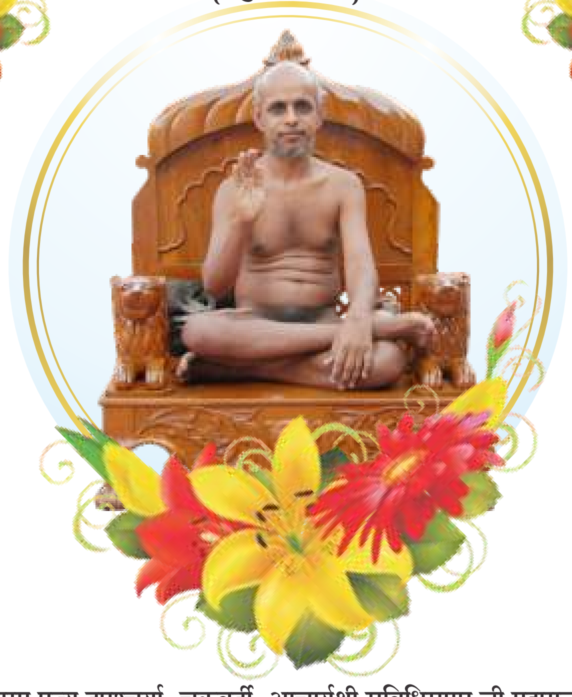

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

विशद
एकीभाव स्तोत्र विधान

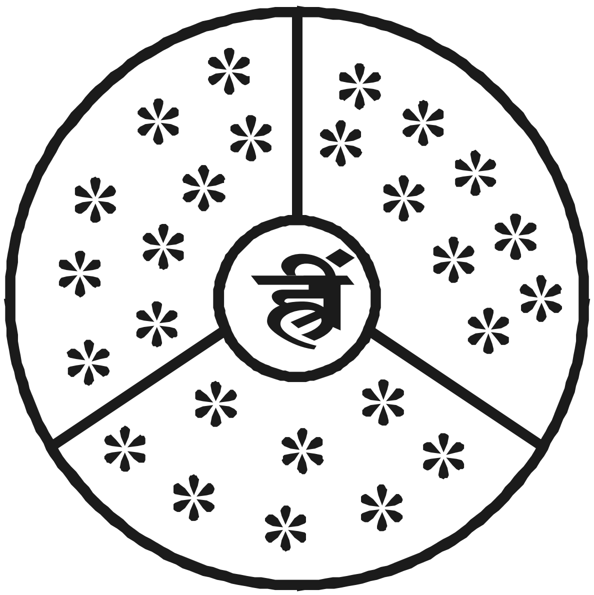

ॐ ह्रीं अर्हं श्री चतुर्विंशति जिनाय नमः

रचयिता

प.पू. आचार्य विशदसागरजी महाराज

कृति - **विशद एकीभाव स्तोत्र विधान**

कृतिकार - प.पू. साहित्य रत्नाकर, क्षमामूर्ति
आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज

संस्करण - द्वितीय-2013 ● प्रतियाँ :1000

संकलन - मुनि श्री 108 विशालसागरजी महाराज

सहयोग - क्षुल्लक विसोमसागरजी

संपादन - ब्र. ज्योति दीदी (9829076085) आस्था
दीदी9660996425, सपना दीदी

संयोजन - किरण, आरती दीदी, उमा दीदी ● मो. 9829127533

प्राप्ति स्थल - 1 जैन सरोवर समिति, निर्मलकुमार गोधा
2142, निर्मल निकुंज, रेडियो मार्केट
मनिहारों का रास्ता, जयपुर
फोन : 0141-2319907 (घर) मो.: 9414812008

2. श्री राजेशकुमार जैन ठेकेदार
ए-107, बुध विहार, अलवर मो.: 9414016566

3. विशद साहित्य केन्द्र
C/o श्री दिगम्बर जैन मंदिर कुआँ वाला जैनपुरी
रेवाड़ी (हरियाणा)प्रधान-09416882301

मूल्य - 21/- रु. मात्र

प्रकाशक : **श्री प्रवीण जैन**
श्री वर्धमान ट्रेडर्स
गली नं. 9-68/14 वेस्ट आजाद नगर
(कृष्णा नगर) दिल्ली-51
मो. 9868485040

प्रकाशक : **श्री हरीश जैन**
जय अरिहंत ट्रेडर्स
6561, नेहरु गली, नियर लाल
बत्ती चौक, गाँधी नगर, दिल्ली
मो. 9818115971

मुद्रक : राजू ग्राफिक आर्ट (संदीप शाह), जयपुर ● फोन : 2313339, मो.: 9829050791

एकीभाव स्तोत्र का चमत्कार

मेरी धर्मपत्नी रितु जैन के चेहरे व गर्दन पर कई मस्से निकल आये थे जिनका मैंने एलोपैथिक, आयुर्वेदिक व होम्योपेथिक सभी प्रकार से इलाज करवाया, किन्तु वे ठीक नहीं हुए, घटते–बढ़ते ही रहे। फिर हमने लोगों के कहे अनुसार हनुमान मंदिर, पीर बाबा इत्यादि में भी मन्नत माँगी, यहाँ तक कि गुरुद्वारा बंगला साहिब में भी प्रति रविवार स्नान कर प्रसाद चढ़ाया किन्तु कोई फर्क नहीं हुआ। फिर एक दिन जिनवाणी में एकीभाव स्तोत्र की कथा पढ़ी तथा मन में इस स्तोत्र के बारे में श्रद्धान हुआ। इसको कुछ दिन मैंने पढ़ा एवं रितु जैन से भी एकीभाव स्तोत्र का पाठ करने के लिए कहा। उसने निश्चल भावों से इस स्तोत्र को पढ़ा और अल्प समय में ही चमत्कारिक रूप से मस्से एकदम गायब हो गये, तब से मैंने इसे कई बार अपने पारिवारिक जनों की व्याधियों में इसे पढ़कर लाभ प्राप्त किया है तथा मेरी इच्छा तब से ही इसका विधान कराने की थी ताकि लोगों को अपने धर्म की ही शक्ति के बारे में पता चले और लोग इधर–उधर न भटकें किन्तु यह उपलब्ध नहीं था। मैंने अपने क्षेत्र में आने वाले कई त्यागी वृतियों से इस बारे में चर्चा की लेकिन इसका समाधान मुझे 10–12 साल बाद आचार्य विशदसागरजी महाराज के पास मिला। श्री दिगम्बर जैन मंदिर, शंकर नगर, दिल्ली में 1 जनवरी से 24 जनवरी, 2013 तक 24 दिवसीय 24 तीर्थंकर विधानों का आयोजन आचार्य श्री 108 विशदसागरजी व मुनि श्री 108 विशालसागरजी महाराज के सान्निध्य में चल रहा था उसी समय प्रथम बार आचार्यश्री द्वारा रचित **'एकीभाव स्तोत्र विधान'** देखने को मिला। मैंने अपने परिवार सहित इस अतिशय पूर्ण विधान को कर असीम आनन्द प्राप्त किया। मेरी यही इच्छा है कि आप भी इस विधान की पूजा का लाभ उठायें।

दोहा– **एकीभाव स्तोत्र है, जग में बड़ा महान्।**
चमत्कार होते कई, करो भव्य गुणगान।।
भक्ती की महिमा अगम, जग में कही अपार।
पाने भव सुख शांति नर, होवे भव से पार।।

–प्रवीण जैन

(दिल्ली मो. 9868485040)

एकीभाव स्तोत्र व्रत विधि

एकीभाव स्तोत्र में छब्बीस पद्य हैं, उन काव्यों के अनुसार छब्बीस (26) व्रत किये जाते हैं। उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य व्रत एकाशन करना है। इसमें तिथियाँ खुली हैं, जब जो तिथि सुविधाजनक हो, उसी दिन व्रत करें। व्रत के दिन स्तोत्र पाठ करें। चौबीस तीर्थंकर भगवान की प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके पूजा करें पुनः प्रत्येक मंत्र पृथक्–पृथक् हैं, उनमें से एक–एक जाप्य करें।

समुच्चय मंत्र–ॐ ह्रीं सर्वव्याधिविनाशनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्–पृथक् मंत्र–

1. ॐ ह्रीं एकीभावसदृशकर्मबंधनाशनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
2. ॐ ह्रीं हृदयस्थितपापान्धकारविनाशनसमर्थाय ज्योतीरूपाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
3. ॐ ह्रीं स्तोत्रमंत्रप्रभावेनदेहस्थविषव्याधिनिष्कासनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
4. ॐ ह्रीं गर्भावतारप्राक्पृथ्वीकनकमयकरणसमानभाक्तिकतनु–सुवर्णीकरणसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
5. ॐ ह्रीं भक्तजनहृदयस्थिततत्सर्वक्लेशविनाशनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
6. ॐ ह्रीं त्वन्नयकथापीयूषवापीमध्यनिर्मग्नभाक्तिकदुःखदावोप–तापशांतकरणसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
7. ॐ ह्रीं पादन्यासस्थलस्वर्णकमलमिवत्वत्स्पृशन्ममभक्तस्य–सर्वश्रेयः प्रदायकाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
8. ॐ ह्रीं भक्तिपात्र्यात्वद्वचनामृतपिबन्भाक्तिक दुर्वाररोगनिवारण–समर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
9. ॐ ह्रीं मानस्तम्भसदृश–त्वत्समीपत्वप्राप्तभाक्तिकजनमान–रोगहरणसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
10. ॐ ह्रीं त्वन्मूर्तिस्पर्शितवायुना निरवधिरोगधूलिधुन्वन्समर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
11. ॐ ह्रीं भाक्तिकजनभव–भवदुःखनिवारणसमर्थपरमदयालु–सर्वेशाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।
12. ॐ ह्रीं मणिजयमालिकया त्वन्नमस्कारमंत्रजपद्भाक्तिकगण–स्वर्गलक्ष्मीप्रभुत्वकरण–समर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

13. ॐ ह्रीं अनवधिस्त्वदुत्कृष्टभक्तिकुञ्चिकानिमित्तेनमुक्ति-द्वारोद्घाटनकारणसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

14. ॐ ह्रीं भवद्भारतीरत्नदीपेन मुक्तिपथावलोकनसामर्थ्य-प्रदायकाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

15. ॐ ह्रीं कर्मक्षोणीपिहितात्मज्योतीनिधिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

16. ॐ ह्रीं त्वद्भक्तिगंगामध्यावगाहकभक्तगणसर्वकल्मष-क्षालनसमर्थाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

17. ॐ ह्रीं त्वद्ध्यायन्भाक्तिकस्य सोऽहमितिमतिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

18. ॐ ह्रीं सप्तभंगीतरंगयुत-त्वद्वाक्यसमुद्रमंथनोद्भवपरमामृत-प्रापकाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

19. ॐ ह्रीं शस्त्रवसनभूषाविरहितपरमसुंदरस्वरूपाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

20. ॐ ह्रीं भवसमुद्रपारंगतसिद्धिकान्तापतित्रैलोक्यप्रभु-स्तुतिश्लाघनाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

21. ॐ ह्रीं भक्तिपीयूषपुष्पभव्यगणाभिमतफलप्रदपारिजाताय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

22. ॐ ह्रीं कोपप्रसादविरहितपरमोपेक्षि-भुवनतिलकप्राभवसहिताय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

23. ॐ ह्रीं सकलतत्त्वग्रन्थस्मरणविषयिबुद्धिप्रदायकाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

24. ॐ ह्रीं अनंतसुखज्ञानवदृग्वीर्यरूपाय भाक्तिकजनपञ्चकल्याण-प्रदायकाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

25. ॐ ह्रीं स्वात्माधीनसुखेच्छुकजनकल्याणकल्पद्रुमाय श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

26. ॐ ह्रीं शाब्दिक-तार्किक-काव्यकृत-भव्यगणोत्कृष्ट श्रीवादिराजसूरिकृत-एकीभावस्तोत्रस्वामिने श्रीतीर्थंकर परमदेवाय नमः।

यह व्रत सर्व प्रकार के रोगों को शांत करके शरीर को आरोग्य प्रदान करने वाला है और परम्परा से आत्मा को स्वस्थ-शुद्ध करके अतीन्द्रिय मोक्षसुख प्राप्त कराने वाला है। साथ ही संसार के भी उत्तम-उत्तम सुखों को देने वाला है।

***

एकीभाव स्तोत्र की कथा

''आचार्य वादिराज मुनिवर राज्य उद्यान में साधनारत् हैं, तभी राज्यमंत्री आकर के उन दिगम्बर मुनिराज को देखता है, जैनधर्म से विद्वेष रखने वाला यह मन्त्री राजसभा में राजा के पास जाकर मुनि निन्दा करते हुए कहता है-हे राजन् ! आपके राज्य उद्यान में नंगा साधु आया है, जिसके सम्पूर्ण शरीर में कुष्ठ रोग व्याप्त है, वह साधु जैनधर्म का गुरु कहलाता है। अज्ञानी और मलीन शरीर वाले ऐसे पाखण्डी को राज्य उद्यान से निकाल देना चाहिए। विद्वेष पूर्ण वार्तालाप एवं मुनि निन्दा राज्यमंत्री के मुख से सुनते ही एक जैन श्रावक से सहन न हुई और होती भी कैसे ? श्रावक के अंदर थी सच्ची गुरु भक्ति, वह बीच में ही बोल पड़ा-हे राजन् ! राज्यमंत्री आप से झूठ कह रहे हैं, जैन मुनि तो सर्वांग, सुन्दर, स्वस्थ, प्रसन्न, वीतराग मुद्रा के धारक होते हैं। मुनिराज को कुष्ठ रोग नहीं है, वह तो कुन्दन की तरह कांतिमान काया वाले हैं।

राजा ने कहा आप दोनों में कौन सत्य कहता है, इसका निर्णय प्रातःकाल राज्य उद्यान में चलकर मुनिराज के पास ही करेंगे। राजा के उक्ताशय भरे विचार सुनकर जैन श्रावक संध्याकाल में ही मुनिराज के पास आया और कहने लगा-हे मुनिवर ! आप दयामूर्ति, करूणासागर, गुण-भंडार, वीतराग, निःस्पृही साधु हैं, आपको अपने तन से जरा-सा भी अनुराग नहीं है पर आज मेरे कारण धर्म के ऊपर संकट आन पड़ा है। उसने समस्त वृत्तांत मुनिराज से कह सुनाया। मुनिराज ने मन में विचार कर कि श्रावक सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का भक्त है। यदि इस समय इसकी रक्षा न की गई तो श्रावक पर कष्ट आ सकता है, धर्म की निन्दा भी हो सकती है। अतः वादिराज मुनिवर रात्रिभर ध्यानस्थ होकर वीतराग प्रभु की भक्ति में तन्मय हो जाते हैं, अंतरंग श्रद्धा से की गई भक्ति चमत्कार पैदा कर देती है। मुनिराज का कुष्ठ रोग समाप्त होने लगता है.....उस समय मुनिराज को स्मरण आता है, यदि सम्पूर्ण शरीर कंचन देही हो जाएगा तो अन्य किसी पर संकट न आन पड़े। इस महान् भावना से भक्ति को विराम देते हैं। मात्र एक अंगुली में जरा-सा कुष्ठ रोग शेष रह जाता है।

प्रातःकाल राजा आता है, दूर से ही कंचन देही मुनिराज को देखकर प्रसन्न हो जाता है। साष्टांग प्रणाम कर पूजा, अर्चना करके धर्मोपदेश श्रवण करता है। पश्चात् मन में विचारता है कि देखो, हमारा मंत्री कितना कपट करता है, मुनिराज को कुष्ठ रोगी कह रहा था, ऐसे मन्त्री को सजा अवश्य देना चाहिए। राजा दण्ड सुनाने के लिए तैयार होता है कि उसके पूर्व ही मुनिराज बोल उठते हैं, हे राजन ! कर्मोदय बड़ा बलवान है, अशुभ कर्मोदय से मुझे कुष्ठ रोग था, देखो इस अंगुली की ओर...

जिनेन्द्र भक्ति के प्रभाव से समस्त, आधि, व्याधि, रोग-शोक, आपत्ति-विपत्ति दूर हो जाते हैं, दुःख भी सुख में बदल जाता है। सच्ची श्रद्धा से की गई जिनेन्द्र प्रभु की उपासना (एकीभाव स्तोत्र) से मेरा यह कुष्ठ रोग दूर हुआ। जो कुछ शेष है, वह भी इसी के द्वारा दूर होगा। राजा के समक्ष ही मुनिराज एकीभाव स्तोत्र पूर्ण करते हैं जिसके प्रभाव से मुनिराज का सर्व शरीर कुष्ठ रहित स्वर्ण कांति युक्त हो जाता है। राजा आश्चर्यचकित रह जाता है। धन्य है जैन मुनि की तपश्चर्या, धन्य है जैनधर्म की महिमा।

दोहा- **एकीभाव स्तोत्र का, करे भाव से पाठ।**
सुख शांति सौभाग्य हो, होंगे ऊँचे ठाठ।।

तब से आज तक यह एकीभाव स्तोत्र चला आ रहा है, यह एक महान स्तोत्र है; किन्तु संस्कृत भाषा में एवं छन्दोच्चारण जटिल होने से जन सामान्य इस स्तोत्र की महिमा से परिचित नहीं हो पाया है।

दुनियाँ के लोग तो दुनियाँ की बात करते हैं।
दुनियाँ के मोह में पड़कर स्वयं का घात करते हैं।।
'विशद' संत तो आत्मा का बोध जगाते हैं।
संत कल्याण की बात को आत्म शात करते हैं।।

एकीभाव स्तोत्र पर ही सरल भाषा में आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज ने इस एकीभाव स्तोत्र महामण्डल विधान की रचना की है। संकट के क्षणों में यह विधान कर जीवन को सौभाग्यशाली बनाएँ।

संकलन : मुनि विशालसागर

श्री नवदेवता पूजा

स्थापना

हे लोक पूज्य अरिहंत नमन् !, हे कर्म विनाशक सिद्ध नमन् !।
आचार्य देव के चरण नमन्, अरु उपाध्याय को शत् वन्दन।।
हे सर्व साधु है तुम्हें नमन् !, हे जिनवाणी माँ तुम्हें नमन् !।
शुभ जैन धर्म को करूँ नमन्, जिनबिम्ब जिनालय को वन्दन।।
नव देव जगत् में पूज्य 'विशद', है मंगलमय इनका दर्शन।
नव कोटि शुद्ध हो करते हैं, हम नव देवों का आह्वानन।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालय समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालय समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालय समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(गीता छन्द)

हम तो अनादि से रोगी हैं, भव बाधा हरने आये हैं।
हे प्रभु अन्तर तम साफ करो, हम प्रासुक जल भर लाये हैं।।
नव कोटि शुद्ध नव देवों की, भक्ती से सारे कर्म धुलें।
हे नाथ! आपके चरणों में, श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।1।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्योः जन्म, जरा, मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार ताप में जलकर हमने, अगणित अति दुख पाये हैं।
हम परम सुगंधित चंदन ले, संताप नशाने आये हैं।।
नव कोटि शुद्ध नव देवों की, भक्ती से भव संताप गलें।
हे नाथ ! आपके चरणों में श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।2।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्योः संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह जग वैभव क्षण भंगुर है, उसको पाकर हम अकुलाए ।
अब अक्षय पद के हेतु प्रभू, हम अक्षत चरणों में लाए ।।
नवकोटि शुद्ध नव देवों की, अर्चाकर अक्षय शांति मिले।
हे नाथ! आपके चरणों में, श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।3।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो: अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहु काम व्यथा से घायल हो, भव सागर में गोते खाये।
हे प्रभु! आपके चरणों में, हम सुमन सुकोमल ले आये।।
नव कोटि शुद्ध नव देवों की, अर्चाकर अनुपम फूल खिलें।
हे नाथ! आपके चरणों में, श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।4।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो:कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हम क्षुधा रोग से अति व्याकुल, होकर के प्रभु अकुलाए हैं।
यह क्षुधा मेटने हेतु चरण, नैवेद्य सुसुन्दर लाए हैं।।
नव कोटि शुद्ध नव देवों की, भक्ती कर सारे रोग टलें।
हे नाथ! आपके चरणों में, श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।5।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो: क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु मोह तिमिर ने सदियों से, हमको जग में भरमाया है।
उस मोह अन्ध के नाश हेतु, मणिमय शुभ दीप जलाया है।।
नव कोटि शुद्ध नव देवों की, अर्चा कर ज्ञान के दीप जलें।
हे नाथ! आपके चरणों में, श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।6।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हसिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो: महा मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

भव वन में ज्वाला धधक रही, कर्मों के नाथ सतायें हैं।
हों द्रव्य भाव नो कर्म नाश, अग्नि में धूप जलायें हैं।।

नव कोटि शुद्ध नव देवों की, पूजा करके वसु कर्म जलें ।
हे नाथ! आपके चरणों में, श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।7।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो: अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सारे जग के फल खाकर भी, हम तृप्त नहीं हो पाए हैं।
अब मोक्ष महाफल दो स्वामी, हम श्रीफल लेकर आए हैं।।
नव कोटि शुद्ध नव देवों की, भक्ति कर हमको मोक्ष मिले।
हे नाथ! आपके चरणों में, श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।8 ।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो: मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हमने संसार सरोवर में, सदियों से गोते खाये हैं।
अक्षय अनर्घ पद पाने को, वसु द्रव्य संजोकर लाये हैं।।
नव कोटि शुद्ध नव देवों के, वन्दन से सारे विघ्न टलें।
हे नाथ! आपके चरणों में, श्रद्धा के पावन सुमन खिलें।।3।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवता अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो: अनर्घ पद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

घत्ता छन्द

नव देव हमारे जगत सहारे, चरणों देते जल धारा।
मन वच तन ध्याते जिन गुण गाते, मंगलमय हो जग सारा।।

शांतये शांति धारा करोमि।

ले सुमन मनोहर अंजलि में भर, पुष्पांजलि दे हर्षाएँ।
शिवमग के दाता ज्ञानप्रदाता, नव देवों के गुण गाएँ।।

दिव्य पुष्पांजलि क्षिपेत्।

***जाप्यह* ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो नमः।**

जयमाला

दोहा– मंगलमय नव देवता, मंगल करें त्रिकाल।
मंगलमय मंगल परम, गाते हैं जयमाल।।

(चाल टप्पा)

अर्हन्तों ने कर्म घातिया, नाश किए भाई।
दर्शन ज्ञान अनन्तवीर्य सुख, प्रभु ने प्रगटाई ।।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटी से, पूजों हो भाई। जि...

सर्वकर्म का नाश किया है, सिद्ध दशा पाई।
अष्टगुणों की सिद्धि पाकर, सिद्ध शिला जाई ।।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटी से, पूजों हो भाई। जि...

पञ्चाचार का पालन करते, गुण छत्तिस पाई।
शिक्षा दीक्षा देने वाले, जैनाचार्य भाई ।।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटि से, पूजों हो भाई।। जि...

उपाध्याय है ज्ञान सरोवर, गुण पच्चिस पाई।
रत्नत्रय को पाने वाले, शिक्षा दें भाई।।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटि से, पूजों हो भाई ।। जि...

ज्ञान ध्यान तप में रत रहते, जैन मुनी भाई।
वीतराग मय जिन शासन की, महिमा दिखलाई।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटि से, पूजों हो भाई ।। जि...

सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित्रमय, जैन धर्म भाई।
परम अहिंसा की महिमा युत, क्षमा आदि पाई।।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटि से, पूजों हो भाई ।। जि...

श्री जिनेन्द्र की ओम् कार मय, वाणी सुखदाई।
लोकालोक प्रकाशक कारण, जैनागम भाई।।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटि से, पूजों हो भाई ।। जि...

वीतराग जिनबिम्ब मनोहर, भविजन सुखदाई।।
वीतराग अरु जैन धर्म की, महिमा प्रगटाई।।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटि से, पूजों हो भाई ।। जि...

घंटा तोरण सहित मनोहर, चैत्यालय भाई।
वेदी पर जिन बिम्ब विराजित, जिन महिमा गाई।।
जिनेश्वर पूजों हो भाई।
नव देवों को नव कोटि से, पूजों हो भाई ।। जि...

दोहा– नव देवों को पूजकर, पाऊँ मुक्ती धाम।
''विशद'' भाव से कर रहे, शत्–शत् बार प्रणाम्।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म जिनागम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो: महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा– भक्ति भाव के साथ, जो पूजें नव देवता।
पावे मुक्ति वास, अजर अमर पद को लहें।।

(इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

एकीभाव स्तवन

(शम्भू छंद)

दश गुण अर्जित है दिव्य गात्र शुभ, तव चरणों में करूँ नमन्।
कोटि प्रभाकर श्रेष्ठ निशाकर, जैत्र तेज तव पद अर्चन।।
दुर्जय घातिकर्म के जेता, चिर कालिक पद चरण नमन्।
घातोपजात सार दश गुणमय, शोभित तव करते वर्णन।।1।।

सुर निकाय से अर्चित जिनवर, करते हैं प्रभु गगन गमन।
दिव्य चतुर्दश अतिशयधारी, तव चरणों में करूँ नमन्।।
त्रिभुवन अधिपति सूचक अनुपम, प्रातिहार्य वसु हैं लक्षण।
अरिनाशक अर्हंत प्रभू तव, चरणों में शत्-शत् वंदन।।2।।

श्रेष्ठ परम केवल नव लब्धी, के धारी तव चरण नमन्।
सम समस्त पद आलोकित जिन, तव पद में शत्-शत् वंदन।।
हे निरंत ! बल निरूपमान हे !, नित्य सौख्यकारी अर्हन्।
नित्य निरंजन चरण आपके, विशद भाव से विशद नमन्।।3।।

तीन लोक के प्रभु मंगलमय, धारी तव पद में वंदन।
पाप हारि शिव सुख प्रद स्वामी, तव चरणों में करूँ नमन्।।
लोक पूज्य उत्तम त्रय जग में, करते तव पद में अर्चन।
शरण भूत तुम तीन लोक में, रक्षक तव पद करूँ नमन्।।4।।

पूर्व लब्ध केवल लब्धी नव, तव चरणों में विशद नमन्।
परमेश्वरर्योपलब्धी धारी, तव पद में शत-शत् वंदन।।
यूथ नाथ मुनि कुञ्जर हो तुम, तव पद करते हम अर्चन।
तीन लोक के एक नाथ तव, पद में हो सविनय वंदन।।5।।

दोहा- होकर के एकाग्र मन, करो प्रभू का ध्यान।
भक्ती का फल है विशद, होगा निज कल्याण।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

एकीभाव स्तोत्र पूजन

(स्थापना)

वादिराज मुनिराज काज यह, अनुपम कीन्हे।
एकीभाव स्तोत्र भाव से, रच शुभ दीन्हे।।
शुभ स्तोत्र पाठकर, कीन्हें कुष्ठ निवारण।
हम पावन स्तोत्र का, करते हैं आह्वानन।
हृदय कमल पर आनकर, हे जिनेन्द्र ! अविकार।
तव चरणों में हम करें, वन्दन बारम्बार

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि रचित एकीभाव स्तोत्र ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि रचित एकीभाव स्तोत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि रचित एकीभाव स्तोत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(शम्भू छंद)

सदियों से हमको हे भगवन्, इस तृषा रोग ने घेरा है।
हम जन्म मरण करते आए, न मिटा आज तक फेरा है।।
हो नाश मेरा जन्मादि जरा, हम नीर चढ़ाने आए हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।1।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार ताप ने सदियों से, प्रभु मोह जाल ने घेरा है।
उपचार अनेकों किए मगर, ना मिटा आज तक फेरा है।।
हम भव आताप विनाश करें, यह गंध चढ़ाने लाए हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।2।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

करके कर्मों का नाश प्रभो !, कंचन सा तन तुमने पाया।
न अक्षय पद हमने पाया, वह पद पाने मन ललचाया।।

हम अक्षय पद के भाव लिए, शुभ यहाँ चढ़ाने लाए हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।3।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

भव-भव में पुष्पों से भगवन् !, हमने जीवन को महकाया।
सदियों से काम वासना को, न पूर्ण आज तक कर पाया।।
हम काम वासना नाश हेतु, यह पुष्प मनोहर लाए हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।4।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

इस क्षुधा वेदना से भगवन् !, सारा यह लोक भ्रमाया है।
इच्छाएँ पूर्ण न हो पाईं, बहु भोजन हमने खाया है।।
हो क्षुधा रोग का नाश पूर्ण, नैवेद्य चढ़ाने लाए हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।5।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अज्ञान अंधेरे में भगवन् !, यह प्राणी जग के भटक रहे।
मिथ्यात्व कषायों में फँसकर, जो माया मोह में अटक रहे।।
हम मोह अन्ध के नाश हेतु, यह दीप जलाकर लाए हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।6।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्नी में तप की हे भगवन् !, कर्मों की धूप जले मेरी।
अब अष्ट कर्म हों नष्ट मेरे, न लगे प्रभु इसमें देरी।।
हम अष्ट कर्म के नाश हेतु, यह गंध जलाने आये हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।7।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल रत्नत्रय का हे भगवन् !, सारे जग से अनुपम होता।
जो धारण करता भाव सहित, वह कर्म कालिमा को खोता।।

हम मोक्ष महाफल पाने को, अब श्रेष्ठ सरस फल लाए हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।8।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

उपसर्ग परीषह हे भगवन् !, हमको न बढ़ने देते हैं।
जो धर्म साधना की क्षमता, सब जीवों की हर लेते हैं।।
हम पद अनर्घ पाने हेतू, यह अर्घ्य चढ़ाने लाए हैं।
जो पद पाया है प्रभु तुमने, उसके हम भाव बनाए हैं।।9।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा– निर्मल जल से हम यहाँ, देते शांती धार।
विधि पूजा की पूर्ण हो, आगम के अनुसार।।

शान्तये शांतिधारा

दोहा– पुष्पाञ्जलि करते यहाँ, पुष्पाञ्जलि ले हाथ।
अर्चा करते आपकी, मुक्ती पाने नाथ !।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

जयमाला

दोहा– वादिराज मुनिराज का, आया मन में ख्याल।
एकीभाव स्तोत्र की, गाते हैं जयमाल।।

चौपाई

एकीभाव स्तोत्र महान्, करता रोग शोक की हान।
भाव सहित करके गुणगान, प्राणी करते हैं कल्याण।।
महिमाशाली यह स्तोत्र, पावन कहा धर्म का स्रोत।
जिसकी महिमा अपरम्पार, श्रेष्ठ रहा जो मंगलकार।।
पढ़कर प्राणी पाते बोध, भाव सहित जो पढ़ते शोध।
सरल सुबोध रहे शुभ छन्द, प्राणी पाते हैं आनन्द।।

श्री जिनेन्द्र को हृदय बसाय, भाव सहित जो महिमा गाय।
धन वैभव सुख शांती पाय, अपने सारे कर्म नशाय।।
पढ़कर प्राणी पाए ज्ञान, भाव सहित करके गुणगान।
नर भव उनका बना महान्, पाया जीवों ने कल्याण।।
इस जीवन का पाया सार, मंगल कीन्हा अपरम्पार।
जागा अन्तर में श्रद्धान, क्षण में पाया सम्यक् ज्ञान।।
सम्यक् चारित पाए जीव, पुण्य बन्ध फिर किए अतीव।
सम्यक् तप करके निज ध्यान, कर्म निर्जरा हुई महान्।।
अंतिम पाए केवलज्ञान, स्तुति का फल रहा प्रधान।
बनें हमारे ऐसे भाव, पा जाएँ हम निज स्वभाव।।
हृदय बसो हे दीनदयाल, इसीलिए गाते जयमाल।
जब तक मेरी चलती श्वाँस, तव चरणों में हो मम वास।।
भव-भव में प्रभु देना साथ, झुका रहे तव चरणों माथ।
ये ही है अन्तिम अरदास, और न कोई मन में आस।।
तुम ही बनो हमारे नाथ, चरणों झुका रहे हम माथ।
चरणों में करते गुणगान, होय 'विशद' मेरा कल्याण।।

दोहा- नेता मुक्ती मार्ग के, सद् गुण के भण्डार।
शीश झुकाते तव चरण, नत हो बारम्बार।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनि विरचित एकीभाव स्तोत्र जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- तीन लोक के नाथ तुम, हे त्रिभुवन पति ईश।
आशा मेरी पूर्ण हो, झुका रहे हम शीश।।

।। इत्याशीर्वादः ।।

अर्घ्यावली

एकीभाव स्तोत्र के, चढ़ा रहे अब अर्घ्य।
पूजा करते भाव से, पाने स्वपद अनर्घ्य।।

मण्डलस्यो परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

एकीभाव स्त्रोत

सर्व कष्ट निवारक *(मन्दाक्रान्ता छंद)*

एकीभावं, गत इव मया, यः स्वयं कर्मबन्धो
घोरं दुःखं, भवभवगतो, दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य, त्वयि जिनरवे, भक्तिरुन्मुक्तये चेज्,
जेतुं शक्यो, भवति न तया, कोऽवरस्तापहेतुः।।1।।

अर्थ-खुद मेरे साथ एकीभाव को प्राप्त हुए की तरह प्रत्येक भव में साथ चलने वाला और कठिनाई से दूर करने योग्य जो कर्मों का बन्ध भयंकर दुःख करता है, हे जिनसूर्य ! आपके विषय में की हुई भक्ति यदि उस भारी कर्मबन्ध के भी छुटकारा के लिये है तो उस भक्ति के द्वारा दूसरा कौन संताप का कारण जीता नहीं जा सकता ? अर्थात् सभी जीते जाते हैं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

एकीभाव को प्राप्त हुए सम, भव-भव में चलने को साथ।
कर्मबन्ध दुख देने वाला, उससे मुक्ति हेतु हे नाथ।।
हे जिनसूर्य ! आपकी भक्ती, से कर्मों का होय विनाश।
तन का हो संताप दूर यदि, क्या आश्चर्य है इसमें खास।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।1।।

ॐ ह्रीं कर्मजनित दुःख निवारण समर्थाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पापान्धकार नाशक

ज्योतीरूपं, दुरितनिवह, ध्वांतविध्वंसहेतुं
त्वामेवाहु, र्जिनवर चिरं, तत्त्वविद्याभियुक्ताः।

चेतोवासे, भवसि च मम, स्फारमुद्रासमानस्
तस्मिन्नंहः, कथमिव तमोवस्तुतो वस्तुमीष्टे ।।2 ।।

अर्थ–हे जिनेन्द्र ! तत्त्वविद्या के जानने वाले ऋषिगण बहुत समय से आपको ही ज्योतिस्वरूप, अतएव पाप–समूहरूप अन्धकार के विनाश के कारण कहते हैं और आप हमारे मनरूपी मन्दिर में अत्यन्त प्रकाशमान हो रहे हो, फिर उस मन्दिर में वास्तव में पापरूप अन्धकार निवास करने के लिए कैसे समर्थ हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

सघन पाप तम के विनाश को, हे प्रभु ! आप हो ज्योति रूप।
तत्त्व ज्ञान के ज्ञाता ऋषिवर, विशद जानते तव स्वरूप।।
ध्यान करे जो प्रभो ! आपका, उसके कर्मों का हो नाश।
अन्धकार का नाश करे ज्यों, दीपक जब भी करे प्रकाश।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।2।।

ॐ ह्रीं पापान्धकार विनाशनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्व व्याधि विनाशक

आनन्दाश्रुस्नपितवदनं, गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत, त्वयि दृढ़मनाः, स्तोत्रमंत्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं, देहवल्मीकमध्यान्
निष्कास्यंते, विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ।।3 ।।

अर्थ–जो आप में स्थिर चित्त हो, हर्ष के आँसुओं से जिस तरह मुख भीग जावे उस तरह और स्तोत्ररूपी मन्त्रों के द्वारा आपकी पूजा करता है, उसके

बहुत समय से परिचित भी शरीर रूप वॉमी से तरह–तरह के भयंकर रोग रूप सांप निकल जाते हैं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

स्थिर चित्त हर्ष के आँसू, से मुख धोए हुए समान।
गद्गद् वाणी से बढ़ता है, स्तोत्र रूप जो मंत्र महान।।
देह रूप वॉमी में रहते, चिर परिचित रोगों के नाग।
हे प्रभु ! शुद्ध चित्त से भरने, से वह जाते बाहर भाग।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।3।।

ॐ ह्रीं विविध विषम देहव्याधि–आवेग विनाशनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सौभाग्य उदयकारक

प्रागेवेह, त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्
पृथ्वीचक्रं, कनकमयतां, देव निन्ये त्वयेदं।
ध्यानद्वारं, मम रुचिकरं, स्वान्तगेहं प्रविष्टस्
तत्किं चित्रं, जिन ! वपुरिदं, यत्सुवर्णीकरोषि ।।4 ।।

अर्थ–हे देव ! भव्य जीवों के पुण्य के कारण स्वर्गलोक से इस धरातल पर आने वाले आपके द्वारा छह माह पहले से ही जब यह भूमण्डल सुवर्णरूपता को प्राप्त कराया गया था अर्थात् स्वर्ण का बना दिया गया था, तब फिर हे जिनेन्द्र ! ध्यानरूप दरवाजे से सहित और प्रेम उत्पन्न करने वाले हमारे मनरूप घर में प्रविष्ट हुए आप इस शरीर को जो सुन्दर अथवा सुवर्णमय कर रहे हो वह क्या आश्चर्य है ? कुछ भी नहीं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

भव्यों के पुण्योदय से प्रभु, स्वर्ग लोक से किया प्रयाण।
छह महीने पहिले भूमण्डल, किया सुरों ने स्वर्ण समान।।
हे जिनेन्द्र ! यदि मन के गृह में, ध्यान द्वार से हुए प्रविष्ट।
क्या आश्चर्य है कंचन काया, प्राप्त करे जो मन को इष्ट।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।4।।

ॐ ह्रीं नानाविध कुष्टरोगहराय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वसौख्य प्रदायी

लोकस्यैकस्त्वमसि, भगवन्निर्निमित्तेन बन्धुस्
त्वय्येवासौ, सकलविषया, शक्तिरप्रत्यनीका।
भक्तिस्फीतां, चिरमधिवसन्मामिकां, चित्तशय्यां
मय्युत्पन्नं, कथमिव ततः, क्लेशयूथं सहेथाः।।5।।

अर्थ–हे भगवन् ! आप लोक के अद्वितीय अकारण हित करने वाले हैं और हर एक पदार्थ को विषय करने वाली शक्ति भी बाधक कारण रहित आप में ही मौजूद है फिर चिरकाल से भक्ति से विस्तृत मेरी मनरूप शैय्या पर निवास करते हुए आप मुझमें पैदा हुए दुःखों के समूह को किस तरह सहन करेंगे ?

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

निष्कारण बन्धु हे भगवन् !, लोक हितैषी परम प्रधान।
सर्व विषयगत शक्ति आप में, निराबाध हैं श्रेष्ठ महान।।
भक्ती से विस्तृत मनरूपी, शैय्या पर जब किए निवास।
तो मुझमें फिर दुख समूह का, सहन करोगे कैसे वास।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।5।।

ॐ ह्रीं अनिमित्तेन लोकहितैषी जगत्बन्धुत्व भावाप्ताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवाताप विध्वंसक

जन्माटव्यां, कथमपि मया, देव दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं, तव नयकथा, स्फारपीयूषवापी।
तस्या मध्ये, हिमकरहिमव्यूहशीते नितान्तं
निर्मग्नं मां, न जहति कथं, दुःखदावोपतापाः।।6।।

अर्थ–हे देव ! संसाररूपी वन में बहुत समय तक घूम करके मैंने आपकी यह नयकथारूपी अमृत की बावड़ी किसी तरह प्राप्त ही कर ली है। अब चन्द्रमा और बर्फ समूह के समान शीतल उस बावड़ी के बीच में अतिशय रूप से डूबे हुए मुझको दुःखरूपी दावानल की गर्मी क्या नहीं छोड़ रही है ? अर्थात् छोड़ रही है।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

रहा घूमता बहुत समय तक, भवरूपी वन में हे देव !
नय गाथा की सुधा बावड़ी, किसी तरह जब मिली स्वमेव।।
बर्फ चन्द्रमा के समूह सम, शीतल है जो अतिशयवान।
दुखरूपी संताप यहाँ से, क्यों न छोड़ेगा स्थान।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।6।।

ॐ ह्रीं पीयूषवर्षावत् तवपुण्यकथांश्रुत्वा जन्माटव्यां क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्याणकारक

पादन्यासादपि च पुनतो, यात्रया ते त्रिलोकीं
हेमाभासो, भवति सुरभिः, श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वाङ्गेण स्पृशति, भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न, मामभ्युपैति।।7।।

अर्थ–विहार के द्वारा तीनों लोकों को पवित्र करने वाले आपके चरण निक्षेप–पांव रखने मात्र से जब कमल सोने जैसा कांतिमान् सुगन्धित और लक्ष्मी–शोभा का निवास हो जाता है तब हे भगवन् ! जबकि आप हमारे सम्पूर्ण मन को सब अंगों से स्पृष्ट कर रहे हैं, छू रहे हैं वह कौनसा कल्याण है ? जो प्रत्येक दिन अपने आप मेरे सामने न आता हो।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

कमल पावड़े बिछते जाते, श्री विहार में स्वर्ण समान।
वह पवित्र हो जाते मानों, सोने जैसे कांतीमान।।
भक्ती करते समय आपका, सर्वांगों से हो स्पर्श।
प्रतिदिन हे कल्याण ! श्रेष्ठ जो, मुझे प्राप्त ना होय सहर्ष।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।7।।

ॐ ह्रीं विहारकाले पादन्यासे स्वर्णकमलयुक्ताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कालज्वरहारक

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं, भक्तिपात्र्या पिबन्तं
कर्मरण्यात्पुरुषमसमानन्दधाम, प्रविष्टम्
त्वां दुर्वारस्मरमदहरं, त्वत्प्रसादैकभूमिं–
क्रूराकाराः कथमिव, रुजाकण्टका निर्लुठन्ति।।8।।

अर्थ–जो किसी के द्वारा नहीं रोका जा सका ऐसे काम के मद को हरण करने वाले आपके दर्शन करने वाले और भक्तिरूपी कटोरी के द्वारा आपके वचनरूपी अमृत के पीने वाले अतएव कर्मरूपी वन से निकलकर अनुपम आनंद के घर में प्रविष्ट हुए आपकी प्रसन्नता के एक आधार स्वरूप पुरुष को भयंकर आकृतिवाले रोगरूपी कांटे किस तरह दुःखी कर सकते हैं ? अर्थात् किसी भी तरह नहीं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

काम के मद को हरने वाले, दर्श आपका रहा महान।
भक्ती रूपी पात्र के द्वारा, वचनामृत का करके पान।।
कर्मरूप वन से बाहर हो, निजानन्द गृह में कर वास।
रोग रूप काँटों के दुख का, कहाँ रहेगा वहाँ निवास।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।8।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवनजयीकामारिविजयप्राप्ताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मानकषाय विध्वंशक

पाषाणात्मा, तदितरसमः, केवलं रत्नमूर्तिः
मानस्तम्भो, भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः।
दृष्टिप्राप्तो, हरति स कथं, मानरोगं नराणां
प्रत्यासत्तिर्यदि न, भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः।।9।।

अर्थ–पत्थर का बना हुआ मानस्तम्भ अन्य पत्थर के स्तम्भ के समान है सिर्फ रत्नमय होता है सो अन्य रत्नों का समूह भी उसकी तरह रत्नमय होता है। फिर वह दृष्टिगोचर होते ही मनुष्यों के अहंकाररूपी रोग को कैसे

हर सकता है ? यदि उसके उस शक्ति की कारणभूत आपकी समीपता नहीं होती तो अर्थात् आपकी समीपता ही दुःखहरण में कारण है।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

मानस्तम्भ बना पत्थर से, अन्य लोष्ठ स्तंभ समान।
मानस्तम्भ रत्नमय है तो, अन्य कई भी रहे महान।।
अहंकार रूपी रोगों को, फिर कैसे वह करे हरण।
यदि समीपता नहीं आपकी, भक्त कोई न करे वरण।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।9।।

ॐ ह्रीं अभिमानीजनानां मानखण्डनकराय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वविघ्न संकट निवारक

हृद्यः प्राप्तो, मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही
सद्यः पुसां, निरवधिरुजाधूलिबन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो, हृदयकमलं, यस्य तु त्वं प्रविष्टस्
तस्याशक्यः, क इह भुवने, देव लोकोपकारः।।10।।

अर्थ–आपके शरीररूपी पहाड़ के समीप बहने वाली मनोहर हवा भी प्राप्त हो शीघ्र ही पुरुषों के अपरिमित रोगरूपी धूलि के सम्बन्ध को दूर कर देती है। फिर ध्यान द्वारा बुलाये गये आप जिसके मनरूप कमल में प्रविष्ट हुए हो हे देव ! उस मनुष्य को इस लोक में कौन लौकिक कल्याण प्राप्त नहीं हो सकता ? अर्थात् सभी प्राप्त हो सकते हैं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

बहने वाली पवन आपके, कायागिरि को कर स्पर्श।
रोग नाशती है मानव के, जीवन में पाए उत्कर्ष।।
आसन जिसमें हृदय आपका, उसके रोगों का हो नाश।
हो कल्याण शीघ्र ही उसका, आश्चर्य क्या इसमें खास।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।10।।

ॐ ह्रीं तववपुस्पर्शितपवनात् नानारोगोपद्रवशमनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वज्ञपद प्रदायक

जानासि त्वं, मम भवभवे, यच्च यादृक्च दुःखं
जातं यस्य, स्मरणमपि मे, शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः, सकृप इति च, त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्त्तव्यं, तदिह विषये, देव एव प्रमाणम्।।11।।

अर्थ–जिसका स्मरण भी मुझे हथियार की तरह पीड़ित करता है ऐसा प्रत्येक भव में मुझे जो और जैसा दुःख प्राप्त हुआ है उसे आप जानते हैं तथा आप सबके स्वामी और दया सहित हैं इसलिये भक्ति से आपके पास आया हूँ, अब इस विषय में जो करना चाहिये उसमें आप ही प्रमाण हैं अर्थात् जैसा आप चाहें वैसा करें।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

जन्म जन्म में दुःख सहे जो, संस्मरण उनके हे देव !
भाले की भाँती चुभते हैं, दयासिन्धु वह मुझे सदैव।।
नाथ आप हो सबके स्वामी, अतः भक्ति से आया पास।
करो आप जो है प्रमाण वह, पूर्ण होय तव चरणों आस।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।11।।

ॐ ह्रीं सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊर्ध्वलोक साम्राज्यपद प्रदायक

प्रापद्दैवं, तव नुतिपदैर्जीव केनोपदिष्टैः
पापाचारी, मरणसमये, सारमेयोपि सौख्यं।
कः संदेहो, यदुपलभते, वासवश्रीप्रभुत्वं
जल्पजाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रं।।12।।

अर्थ–बुरे आचरण करने वाला कुत्ता भी जब मृत्यु के समय जीवन्धरकुमार के द्वारा उपदेश दिये गये आपके नमस्कार मन्त्र के पदों से देव सम्बन्धी सुख को प्राप्त हुआ था तब निर्मल जपने योग्य मणियों के द्वारा आपके नमस्कार मन्त्र के मणियों के द्वारा पढ़ता हुआ पुरुष जो इन्द्र की लक्ष्मी के आधिपत्य को प्राप्त होता है इसमें क्या सन्देह है ? अर्थात् कुछ नहीं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

बुरा आचरण करने वाला, कुत्ता भी जब मरणासन्न।
महामंत्र सुन जीवंधर से, हुआ देवगति में उत्पन्न।।
मणि मालाओं के द्वारा जो, महामंत्र पढ़ता नवकार।
क्या संदेह इन्द्र का वैभव, पाता है जो अपरम्पार।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।12।।

ॐ ह्रीं त्वून्नाममंत्र प्रभावात् इन्द्रोपमवैभवप्राप्ताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्तिमहल द्वार उद्घाटक

शुद्धे ज्ञाने, शुचिनि चरिते, सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नो, चेदनवधिसुखावञ्चिका कुञ्चिकेयं।
शक्योद्घाटं, भवति हि कथं, मुक्तिकामस्य पुंसो–
मुक्तिद्वारं, परिदृढ़महामोहमुद्राकवाटम्।।13।।

अर्थ–शुद्ध ज्ञान और पवित्र चरित्र के मौजूद रहते हुए भी यदि आपके विषय में असीम सुख प्राप्त कराने वाली कुंजी स्वरूप यह उत्कृष्ट भक्ति नहीं हो तो निश्चय से मोक्ष के अभिलाषी पुरुष के जिस पर मजबूत मोहरूपी ताले से बन्द किवाड़ लगे हुए हैं ऐसा मोक्ष–महल का दरवाजा किस प्रकार खोलने के योग्य है ? अर्थात् नहीं है।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

शुद्ध ज्ञान चारित्र सहित भी, है कोई भक्ती से हीन।
बन्द कपाट मोह का ताला, कैसे खोले कुंजि विहीन।।
सौख्य प्राप्त क्या कर पाएगा, मानव मोक्ष की आशावान।
भक्तिहीन मानव का भव से, विशद नहीं होगा उत्थान।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।13।।

ॐ ह्रीं मुक्तिद्वार उद्घाटनकरण समर्थ सम्यग्दर्शन प्राप्ताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्षमार्ग प्रकाशक

प्रच्छन्नः, खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्तात्–
पन्था मुक्तेः, स्थपुटितपदः, क्लेशगर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन, व्रजति सुखतो, देव तत्त्वावभासी
यद्यग्रेऽग्रे, न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः।।14।।

अर्थ–निश्चय से यह मुक्ति का मार्ग सब ओर से पापरूपी अन्धकार के द्वारा ढका हुआ और गहरे दुःखरूपी गड्डों से ऊँचे–नीचे स्थानवाला (अस्ति) है। हे देव ! जीव–अजीव आदि तत्त्वों को प्रकाशित करने वाला आपकी दिव्यध्वनि रूपी रत्नों का दीपक यदि आगे–आगे नहीं हो तो उस मार्ग से कौन पुरुष सुख से गमन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

मोह तिमिर से ढका हुआ है, मोक्षमार्ग चारों ही ओर।
ऊबड़–खाबड़ दुख के गड्ढों, से आच्छादित है जो घोर।।
तत्त्व देशना रूपी रत्नों, के दीपक शुभ हे जिनदेव।
आगे–आगे नहीं चलें तो, मार्ग मिले कैसे स्वमेव।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।14।।

ॐ ह्रीं दीपशिखावत् पापान्धकार विनाशनाय जिनध्वनि मुक्तिपथ प्रदर्शनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्पत्तिदायक

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टरानन्दहेतुः
कर्मक्षोणीपटलपिहितो, योऽनवाप्यः परेषां।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः
स्तोत्रैर्बद्धप्रकृतिपरुषोद्दामधात्रीखनित्रैः।।15।।

अर्थ–जो आत्मज्ञानरूपी खजाना सीमा रहित है देखने वाले के आनन्द का कारण है, कर्मरूपी पृथ्वी के पटल से ढका हुआ है और अन्य–मिथ्यादृष्टियों को दुर्लभ है उसे आपकी भक्ति के भागी पुरुष प्रकृति प्रदेश स्थिति और अनुभागरूप बन्ध के भेदों से अत्यन्त कठोर पृथ्वी को खोदने के लिये कुदाली स्वरूप स्तोत्रों के द्वारा बहुत जल्दी हाथ में कर लेते हैं, पा लेते हैं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

आत्मज्ञान का कोष असीमित, सुख का कारण रहा महान।
कर्म पटल से ढका हुआ है, मिथ्यात्वी न पावे आन।।
पढ़कर के स्तोत्र भक्ति से, मानव बंध प्रकृति स्वरूप।
खोद कठोर भूमि को क्षण में, कर लेता है निज अनुरूप।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।15।।

ॐ ह्रीं स्वपर भेदविज्ञानवलेन आत्मज्योति निधिप्राप्ताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जलभयनाशक

प्रत्युत्पन्ना, नयहिमगिरेरायता चामृताब्धेः
या देव त्वत्पदकमलयोः, संगता भक्तिगङ्गा।
चेतस्तस्यां, मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद्भवति किमियं, देव संदेहभूमिः।।16।।

अर्थ–हे देव ! नयरूप हिमालय से पैदा हुई और मोक्षरूपी समुद्र तक लम्बी जो भक्तिरूपी गङ्गा आपके चरण कमलों में प्राप्त हुई है उसमें श्रद्धा के वश से स्नान किया हुआ मेरा मन जो धुल गये हैं पापरूप मैल जिसके ऐसा हो रहा है हे देव ! यह क्या संशय का स्थान है ? अर्थात् नहीं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

नयरूपी हिमगिरि से निकली, गंगा भक्ती रूप महान्।
मोक्षरूप सागर में जाए, श्रद्धा से करना स्नान।।
मेरे मन में पाप रूप मल, साफ हुआ है अपरम्पार।
संशय का स्थान कहाँ है, हे जिन ! इसमें किसी प्रकार।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।16।।

ॐ ह्रीं अनेकान्तमयीमूर्ति सरस्वतीवाग्वादिनी राग-द्वेष मोहादिमनोविकार शमनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनोवांछित फलप्रदायक

प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख ! त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं, स इति मति, रुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं, तदपि तनुते, तृप्तिमभ्रेषरूपां
दोषात्मानोप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति।।17।।

अर्थ–जिनके स्थायी सुख प्रकट हुआ है ऐसे हे जिनेन्द्रदेव ! आपका निरन्तर ध्यान करते हुए मेरी, आप में मैं वही हूँ–जो आप हैं ऐसी विकल्परहित बुद्धि उत्पन्न होती है। यद्यपि यह बुद्धि झूठ ही है तथापि अविनश्वर तृप्ति को विस्तृत कर देती है। ठीक है कि आपके प्रसाद से सदोष आत्माएँ भी इच्छित फल को प्राप्त हो जाती हैं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

शाश्वत सुख प्रगटाने वाले, हे जिनेन्द्र ! तव करके ध्यान।
मैं भी वही आप हैं जो प्रभु, हो जाता ऐसा श्रद्धान।।
यद्यपि झूठ बुद्धि है फिर भी, अविनश्वर हो तृप्ति महान्।
तव अनुकंपा से दोषी जन, इच्छित फल पाते हैं आन।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।17।।

ॐ ह्रीं मनोवांछित फलप्रदाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तभयनाशक

मिथ्यावादं, मलमपनुदन्सप्तभङ्गीतरङ्गैर्–
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं, देव ! पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं, सपदि विबुधाश्चैतसैवाचलेन
व्यातन्वन्तः, सुचिरममृतासेवया तृप्नुबन्ति।।18।।

अर्थ–हे देव ! आपका जो दिव्यध्वनिरूपी समुद्र सप्तभङ्गरूप लहरों के द्वारा मिथ्यावाद रूप मल को हटाता हुआ समस्त संसार को बेड़ रहा हैं– वेष्टित कर रहा है देव अथवा बुद्धिमान् मनरूप मन्दर गिरि के द्वारा उस वचन–समुद्र की मन्थन क्रिया अथवा बार–बार अभ्यास को विस्तृत करते हुए शीघ्र ही पीयूषपान अथवा मोक्ष प्राप्ति से हमेशा के लिये सन्तुष्ट हो जाते हैं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

दिव्य देशना के सागर में, सप्त भंग मय लहरें नाथ।
सर्व लोक को वेष्टित करता, मिथ्यावाद हटाए साथ।।
मनरूपी मंदार गिरि से, किया गया सागर मंथन।
अमृतपान करे जो मानव, मोक्षमार्ग में होय गमन।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।18।।

ॐ ह्रीं सप्तभंगनयगर्भित जिनवाणी मिथ्यामलहराय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कामदेव-सा सौंदर्य संपदाकारक

आहार्य्येभ्यः, स्पृहयति परं, यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्रग्राही, भवति सततं, वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु, त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषावसनकुसुमैः, किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः।।19।।

अर्थ–जो स्वभाव से असुन्दर होता है वही अतिशय रूप से आभूषण वगैरह चाहता है और जो शत्रु के द्वारा शक्य होता है–जीता जा सकता है व वही हमेशा हथियार धारण करनेवाला होता है। आप सब अङ्गों में सुन्दर हो और न आप शत्रुओं से जीते जा सकने योग्य हो इसलिये आपको आभूषण वस्त्र तथा फूलों से क्या प्रयोजन ? और अस्त्र–शस्त्रों से क्या प्रयोजन है ?

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

गहने वस्त्र चाहते हैं वह, जो स्वभाव से रहे कुरूप।
अस्त्र–शस्त्र धारण करते वह, जिनके शत्रु हैं कोई भूप।।
सुन्दर हो सर्वांग आप ना, शत्रू से जीते जाते।
अतः पुष्प वस्त्र आभूषण, अस्त्र–शस्त्र प्रभु न पाते।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।19।।

ॐ ह्रीं अद्भुतरूपाय अजात शत्रु जिताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संतापहर लक्ष्मी सौभाग्यदायक

इन्द्रः सेवां, तव सुकुरुतां, किं तयाश्लाघनं ते
तस्यैवेयं, भवलयकरी, श्लाघ्यतामातनोति।
त्वं निस्तारी, जननजलधेः, सिद्धिकान्तापतिस्त्वं
त्वं लोकानां, प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थं।।20।।

अर्थ–इन्द्र आपकी सेवा को अच्छी तरह करे उससे आपकी क्या प्रशंसा है ? यह सेवा तो उसी इन्द्र की संसार का नाश करने वाली प्रशंसा को विस्तृत करती है। आप संसार–समुद्र से तारने वाले हैं, आप मुक्तिरूप स्त्री के पति हैं और आप तीनों लोकों के निग्रह–अनुग्रह में समर्थ हैं इस प्रकार यह आपकी स्तुति प्रशंसनीय है।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

इन्द्र आपकी सेवा करता, कहाँ प्रशंसा का यह कार्य।
नाश करे संसार वास का, होय प्रशंसा का विस्तार।।
भव सिन्धू के तारणहारे, मुक्ति रमा के तुम हो ईश।
अनुग्रह कर्त्ता तीन लोक में, प्रशंसनीय तुम हो जगदीश।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।20।।

ॐ ह्रीं भवसागर तारणाय शिवकान्ता अधिपति जिनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आधि-व्याधि विघ्न विनाशक

वृत्तिर्वाचामपरसदृशी, न त्वमन्येन तुल्यः
स्तुत्युद्गाराः, कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि, भगवन्भक्तिपीयूषपुष्टास्
तेभव्यानामभिमतफलाः, पारिजाता भवन्ति।।21।।

अर्थ–हे नाथ ! आपके वचनों की प्रवृत्ति दूसरे के समान नहीं है और न आप भी अन्य के सदृश हैं उस कारण से हमारे ये स्तुति वाक्य आपके विषय में किस तरह संगत हो सकते हैं अथवा ऐसा न हो–हमारे स्तुति के उद्‌गार आपके विषय में संगत न भी हों तो भी भक्तिरूप अमृत से पुष्ट हुए वे स्तुति के उद्‌गार भव्य जीवों को इच्छित फल देने वाले कल्पवृक्ष होते हैं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

वचन प्रवृत्ति अन्य रूप है, आप अन्य चेतन चित्वान।
कैसे संगत हो पाएँगे, स्तुति वाक्य मेरे भगवान।।

भक्ति सुधा से पुष्ट हुए जो, मेरे स्तुति के उद्गार।
भव्यों को इच्छित फलदाई, कल्पतरु मानो मनहार।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।21।।

ॐ ह्रीं कल्पवृक्षोपम मनोवांछित फलप्रदाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शत्रुनाशक

कोपावेशो, न तव न तव, क्वापि देव प्रसादो
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं, तदपि भुवनं, सन्निधिर्वैरहारी
क्वैवंभूतं, भुवनतिलकं !, प्राभवं त्वत्परेषु।।22।।

अर्थ–हे देव ! यद्यपि आपका किसी पर न क्रोधमय भाव होता है और न किसी पर आपकी प्रसन्नता ही होती है। निश्चय से आपका चित्त निरपेक्ष की तरह अत्यन्त उपेक्षा से व्याप्त है तो भी संसार आपकी आज्ञा के अधीन है और आपकी निकटता शत्रुता को दूर करने वाली है। हे संसार के तिलक ! ऐसा स्वामित्व आप से भिन्न किसमें है ? अर्थात् किसी में नहीं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

नहीं किसी पर हो प्रसन्न तुम, नहीं किसी पर करते रोष।
उदासीन है चित्त आपका, रहित अपेक्षा से निर्दोष।।
आशा के आधीन जगत यह, शत्रु निकटता से हो दूर।
नाथ कहाँ स्वामित्व आप से, मिले हमें ऐसा भरपूर।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।22।।

ॐ ह्रीं वीतरागी वीतद्वेषीजिनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

राज्य सम्मान सौभाग्यवर्धक

देव स्तोतुं, त्रिदिवगणिकामण्डलीगीतकीर्तिं
तोतूर्ति त्वां, सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनो यः।
तस्य क्षेमं, न पदमटतो, जातु जाहूर्ति पन्थास्
तत्त्वग्रन्थस्मरणविषयै नैष मोमूर्ति मर्त्यः।।23।।

अर्थ–हे देव ! स्वर्ग की अप्सराओं के समूह द्वारा जिनकी कीर्ति गाई गई है ऐसे तथा सब पदार्थों को विषय करने वाले ज्ञान की मूर्तिस्वरूप आपको स्तुत करने के लिये जो मनुष्य शीघ्रता करता है कल्याणकारक पद अर्थात् मोक्ष के प्रति करने वाले उस पुरुष का मार्ग कभी कुटिल नहीं होता और न यह मनुष्य सिद्धान्त ग्रन्थों के स्मरण के विषय में मूर्च्छा को प्राप्त होता है।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

स्वर्ग लोक से आने वाली, श्रेष्ठ अप्सराएँ शुभकार।
नाथ आपका करें स्तवन, सकल द्रव्य के जाननहार।।
मोक्षमार्ग न कुटिल कभी हो, हो सिद्धांत शास्त्र ज्ञाता।
निराबाध वह मुक्ती पथ में, विशद शीघ्र ही बढ़ जाता।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।23।।

ॐ ह्रीं त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ जिनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वसौख्यप्रदायी

चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं
देव त्वां यः, समयनियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं, स खलु सुकृती, तावता पूरयित्वा
कल्याणानां, भवति विषयः, पञ्चधापञ्चितानां।।24।।

अर्थ–हे देव ! जो मनुष्य अनन्त सुख, ज्ञान, दर्शन और वीर्य स्वरूप आपको मन में धारण करता हुआ समय के नियम से अर्थात् निश्चित समय तक आदरपूर्वक स्तुति करता है निश्चय से वह पुण्यात्मा उस स्तवन मात्र से मोक्षमार्ग को पूर्ण कर गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण इन पाँच भेदों से विस्तृत कल्याणों का विषय होता है।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

नाथ चतुष्टय रूप आपका, जिसने भी मन में धारा।
आदरपूर्वक समयसार युत, स्तुति को भी उच्चारा।।
भव्य जीव स्तवन मात्र से, मोक्षमार्ग को करता पूर्ण।
कल्याणक पाँचों पाता है, भव्य जीव अतिशय परिपूर्ण।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।24।।

ॐ ह्रीं अनन्तचतुष्टयसहिताय पंचकल्याणकप्राप्ताय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बुद्धिबल प्रदायक

भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद !, त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि, संयमभृतः, के हन्त मन्दावयम्।
अस्माभिः, स्तवनच्छलेन, तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः, कल्याणकल्पद्रुमः ।।25।।

अर्थ–भक्ति से नम्रीभूत इन्द्रों के द्वारा जिनके चरण पूजित हुए हैं ऐसे हे जिनेन्द्रदेव ! सूक्ष्मज्ञान ही जिनके नेत्र हैं ऐसे महर्षि भी आपके गुणगान में जब समर्थ नहीं हैं तब खेद है कि हम मूर्ख कौन हैं ? किन्तु स्तुति के छल से हमारे द्वारा आपमें अधिक सम्मान विस्तृत किया जाता है। निश्चय से वह सम्मान निज आत्मा के आश्रित सुख के चाहने वाले हम लोगों के लिये कल्याणकारी कल्पवृक्ष (अस्ति) है।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

नम्रीभूत हुए इन्द्रों से, पूजित जिनके अपरम्पार।
गुण गाने में न समर्थ हैं, ऋषी मुनी कोई अनगार।।
मंदबुद्धि हम स्तुति करके, आदर का पाते अधिकार।
आतम सुख के लिए कल्पतरु, भक्ति आपकी है शुभकार।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।25।।

ॐ ह्रीं नरेन्द्र–मुनीन्द्र–देवेन्द्रार्चित चरण–कमल जिनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वसिद्धिदायक (*स्वागता छन्द*)

वादिराजमनु शाब्दिक लोको, वादिराजमनु तार्किक सिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्यसहायः ।।26।।

अर्थ–वैय्याकरण–व्याकरण शास्त्र के वेत्ता वादिराज से हीन हैं श्रेष्ठ नैयायिक वादिराज से हीन हैं। प्रसिद्ध कवि लोग वादिराज से हीन हैं और सज्जनगण भी वादिराज से हीन हैं।

जिनवर केवलज्ञानी हैं, वीतराग विज्ञानी हैं।
उनकी हम जयकार करें, चरणों में नित शीश धरें।।

शब्द शास्त्र के ज्ञाता सारे, वादिराज के आगे हीन।
तार्किक सिंह सभी पड़ जाते, वादिराज के आगे दीन।।
जो प्रसिद्ध कवि रहे लोक में, वादिराज के आगे आन।
हो जाते असहाय पूर्णतः, सज्जनगण जो रहे महान।।

तीर्थंकर जिनदेव कहे, वादिराज जिन भक्त रहे।
दोनों पूज्य हमारे हैं, भव से तारण हारे हैं।।26।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनीन्द्र विरचित एकीभाव स्तोत्रागतजिनाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री चतुर्विंशति जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाप–ॐ ह्रीं अर्हं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर जिनेन्द्राय नमः।

समुच्चय जयमाला

दोहा– एकीभाव स्तोत्र से, हो रोगों का नाश।
जयमाला गाते यहाँ, पाने ज्ञान प्रकाश।।

चौपाई छन्द

लोकालोक है अतिशयकारी, है त्रिलोक जिसमें मनहारी।
ऊर्ध्व अधो अरू मध्य बखानो, छह द्रव्यें जिसमें पहिचानो।।
मध्यलोक है मंगलकारी, जम्बूद्वीप है विस्मयकारी।
जिसमें जम्बूद्वीप बताया, भरत क्षेत्र उसमें भी गाया।।
भारत देश रहा शुभकारी, आर्यखंड की महिमा न्यारी।
पावन दक्षिण प्रान्त कहाया, धर्मक्षेत्र अतिशय कहलाया।।
मतिसागर मुनिवर को जानो, द्राविण संघ का जिनको मानो।
वादिराज मुनिवर हैं ज्ञानी, मीठी मधुर बोलते वाणी।।
मतिसागर के शिष्य कहाए, नन्दी संघी जो कहलाए।
उदय कर्म का मुनि के आया, कुष्ट रोग ने उन्हें सताया।।
मिथ्या मति का धारी जानो, धर्म विरोधी जिसको मानो।
जयसिंह राजा का दरबारी, मिथ्यामति अज्ञानी भारी।।
सभा में उसने बात चलाई, मुनि कुष्ठी होते हैं भाई।
श्रावक बात नहीं सह पाया, उसने कंचनवत् बतलाया।।
राजा ने यह बात सुनाई, हम भी दर्श करेंगे भाई।
क्षण में निर्णय हो जायगा, दोषी दण्ड स्वयं पाएगा।।
श्रावक अति मन में घबराया, मुनिवर के चरणों में आया।
अपनी सारी व्यथा सुनाई, चिंता करो न मन में भाई।।
मुनिवर ने कह धैर्य बंधाया, श्रावक लौट के घर को आया।
प्रातः राजा वहाँ पर आये, प्रजा साथ में अपनी लाए।।
मुनिवर ने तव ध्यान लगाया, एकीभाव स्तोत्र बनाया।
चौथा पद पढ़ते सुखदायी, कुष्ट विनाश हुआ तब भाई।।
कांतीमय तन मुनि का पाया, राजा मन में अति हर्षाया।
क्रोधित हुआ तभी नृप भारी, पास बुलाया वह दरबारी।।

दण्ड का नृप के मन में आया, मुनिवर ने तब उसे बताया।
उसका दोष नहीं कुछ मानो, तन में रोग था मेरे जानो।।
अंगुली आगे कर दिखलाई, उसमें कुष्ठ दिखाया भाई।
मुनिवर ने स्तोत्र सुनाया, कुष्ठ दूर करके दिखलाया।।
चमत्कार लख के नर–नारी, जय–जयकार किए थे भारी।
नृप ने जैनधर्म अपनाया, श्रद्धा से पद शीश झुकाया।।
यह स्तोत्र पढ़े जो ज्ञानी, रोगादिक नाशें वह प्राणी।
अपने सारे कर्म नशावे, अनुक्रम से वह मुक्ती पावे।।

दोहा– एकीभाव स्तोत्र की, महिमा अगम अपार।
पढ़ सुनकर के भव्य नर, पाते भवदधि पार।।

ॐ ह्रीं श्री वादिराज मुनिरचित एकीभाव स्तोत्र जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा– जग में रहा महान, एकीभाव स्तोत्र यह।
करूँ विशद गुणगान, जब तक मुक्ती न मिले।।

इत्याशीर्वादः

चौबीस जिन की आरती *(तर्ज – मांई रि मांई ...)*

चौबिस जिन की आरति करने, दीप जलाकर लाए।
विशद आरती करने के शुभ, हमने भाग्य जगाए।।
जिनवर के चरणों में नमन्, प्रभुवर के चरणों में नमन्।
ऋषभ नाथ जी धर्म प्रवर्तक, अजित कर्म के जेता।
सम्भव जिन अभिनन्दन स्वामी, अतिशय कर्म विजेता।।
सुमति नाथ जिनवर के चरणों, मति सुमति हो जाए। विशद आरती ...
पद्म प्रभु जी पद्म हरे हैं, जिन सुपार्श्व जी भाई।
चन्द्र प्रभु अरु पुष्पदन्त की, धवल कांति सुखदाई।।
शीतल जिन के चरण शरण में, शीतलता मिल जाए। विशद आरती ...
श्रेयनाथ जिन श्रेय प्रदायक, वासुपूज्य जिन स्वामी।
विमलानन्त प्रभु कहलाए, जग में अन्तर्यामी।।
धर्मनाथ जी धर्म प्रदाता, इस जग में कहलाए। विशद आरती ...
शांति कुन्थु अरु अरह नाथ जी, तीन–तीन पद पाए।

चक्री काम कुमार तीर्थंकर, बनकर मोक्ष सिधाए।।
मल्लिनाथ जी मोह मल्ल को, क्षण में मार भगाए। विशद आरती ...
मुनिसुव्रत जी व्रत को धारे, नमी धर्म के धारी।
नेमिनाथ जी करुणा धारे, पार्श्वनाथ अविकारी।।
वर्धमान सन्मति वीर अति, महावीर कहलाए। विशद आरती ...

प्रशस्ति

भरत क्षेत्र में देश शुभ, भारत जिसका नाम।
हरियाणा शुभ प्रांत है, हरियाली का धाम।।
तीर्थ तिजारा के निकट, शोभित है स्थान।
रेवाड़ी शुभ जिला है, जिसकी अलग है शान।।
दो हजार ग्यारह शुभम्, कीन्हा वर्षायोग।
पूजा लिखने का यहाँ, बना श्रेष्ठ संयोग।।
एकीभाव स्तोत्र शुभ, है विधान का नाम।
जिनवर के आशीष का, है सारा यह काम।।
वीर निर्वाण पच्चीस सौ, सैंतिस रहा महान्।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, पार्श्वनाथ निर्वाण।।
समय लगे शुभ योग में, लेखन कीन्हा कार्य।
पूजन भक्ती अर्चना, करें सभी जन आर्य।।
अर्हन्तों के चरण में, रहे सदा ही ध्यान।
सिद्धों का मुख से मेरे, होय सदा गुणगान।।
आचार्यों की वंदना, करते रहें त्रिकाल।
उपाध्याय के पद युगल, में वन्दन नत भाल।।
सर्व साधु के ध्यान से, जागे आतम ज्ञान।
जागे मेरे हृदय में, वीतराग विज्ञान।।
भूल-चूक को भूलकर, होय धर्म का ध्यान।
मेरी अन्तिम भावना, शीघ्र होय निर्वाण।।
सुख शांतीमय शुभ रहे, सारा यह संसार।
राग त्याग कर हम बनें, विशद शीघ्र अनगार।।

एकीभाव स्तोत्र पाठ

एकीभाव को प्राप्त हुए सम, भव-भव में चलने को साथ।
कर्मबन्ध दुख देने वाला, उससे मुक्ती हेतु हे नाथ !
हे जिनसूर्य ! आपकी भक्ती, से कर्मों का होय विनाश।
तन का हो संताप दूर यदि, क्या आश्चर्य है इसमें खास।।1।।
सघन पाप तम के विनाश को, हे प्रभु ! आप हो ज्योतीरूप।
तत्त्व ज्ञान के ज्ञाता ऋषिवर, विशद जानते तव स्वरूप।।
ध्यान करे जो प्रभो ! आपका, उसके कर्मों का हो नाश।
अन्धकार का नाश करे ज्यों, दीपक जब भी करे प्रकाश।।2।।
स्थिर चित्त हर्ष के आँसू, से मुख धोए हुए समान।
गद्गद् वाणी से बढ़ता है, स्तोत्र रूप जो मंत्र महान्।।
देह रूप वामी में रहते, चिर परिचित रोगों के नाग।
हे प्रभु ! शुद्ध चित्त से भरने, से वह जाते बाहर भाग।।3।।
भव्यों के पुण्योदय से प्रभु, स्वर्ग लोक से किया प्रयाण।
छह महीने पहिले भूमण्डल, किया सुरों ने स्वर्ण समान।।
हे जिनेन्द्र ! यदि मन के गृह में, ध्यान द्वार से हुए प्रविष्ट।
क्या आश्चर्य है कंचन काया, प्राप्त करे जो मन को इष्ट।।4।।
निष्कारण बन्धु हे भगवन् !, लोक हितैषी परम प्रधान।
सर्व विषयगत शक्ति आप में, निराबाध है श्रेष्ठ महान्।।
भक्ती से विस्तृत मनरूपी, शैय्या पर जब किए निवास।
तो मुझमें फिर दुख समूह का, सहन करोगे कैसे वास।।5।।
रहा घूमता बहुत समय तक, भवरूपी वन में हे देव !
नय गाथा की सुधा बावड़ी, किसी तरह जब मिली स्वमेव।।
बर्फ चन्द्रमा के समूह सम, शीतल है जो अतिशयवान।
दुखरूपी संताप यहाँ से, क्यों न छोड़ेगा स्थान।।6।।
कमल पावड़े बिछते जाते, श्री विहार में स्वर्ण समान।
वह पवित्र हो जाते मानों, सोने जैसे कांतीमान।।
भक्ती करते समय आपका, सर्वांगों से हो स्पर्श।
प्रतिदिन हे कल्याण श्रेष्ठ जो, मुझे प्राप्त ना होय सहर्ष।।7।।

काम के मद को हरने वाले, दर्श आपका रहा महान।
भक्ती रूपी पात्र के द्वारा, वचनामृत का करके पान।।
कर्मरूप वन से बाहर हो, निजानन्द गृह में कर वास।
रोग रूप काँटों के दुख का, कहाँ रहेगा वहाँ निवास।।8।।
मानस्तम्भ बना पत्थर से, अन्य लोष्ठ स्तंभ समान।
मानस्तम्भ रत्नमय है तो, अन्य कई भी रहे महान।।
अहंकार रूपी रोगों को, फिर कैसे वह करे हरण।
यदि समीपता नहीं आपकी, भक्त कोई न करे वरण।।9।।
बहने वाली पवन आपके, कायागिरि को कर स्पर्श।
रोग नाशती है मानव के, जीवन में पाए उत्कर्ष।।
आसन जिसमें हृदय आपका, उसके रोगों का हो नाश।
हो कल्याण शीघ्र ही उसका, आश्चर्य क्या इसमें खास।।10।।
जन्म जन्म में दुःख सहे जो, संस्मरण उनके हे देव !
भाले की भाँती चुभते हैं, दयासिन्धु वह मुझे सदैव।।
नाथ आप हो सबके स्वामी, अतः भक्ति से आया पास।
करो आप जो है प्रमाण वह, पूर्ण होय तव चरणों आस।।11।।
बुरा आचरण करने वाला, कुत्ता भी जब मरणासन्न।
महामंत्र सुन जीवंधर से, हुआ देवगति में उत्पन्न।।
मणि मालाओं के द्वारा जो, महामंत्र पढ़ता नवकार।
क्या संदेह इन्द्र का वैभव, पाता है जो अपरम्पार।।12।।
शुद्ध ज्ञान चारित्र सहित भी, है कोई भक्ती से हीन।
बन्द कपाट मोह का ताला, कैसे खोले कुंजि विहीन।।
सौख्य प्राप्त क्या कर पाएगा, मानव मोक्ष की आशावान।
भक्तिहीन मानव का भव से, विशद नहीं होगा उत्थान।।13।।
मोह तिमिर से ढका हुआ है, मोक्षमार्ग चारों ही ओर।
ऊबड़-खाबड़ दुख के गड्ढों, से आच्छादित है जो घोर।।
तत्त्व देशना रूपी रत्नों, के दीपक शुभ हे जिनदेव !
आगे-आगे नहीं चलें तो, मार्ग मिले कैसे स्वमेव।।14।।
आत्मज्ञान का कोष असीमित, सुख का कारण रहा महान्।
कर्म पटल से ढका हुआ है, मिथ्यात्वी न पावे आन।।

पढ़कर के स्तोत्र भक्ति से, मानव बंध प्रकृति स्वरूप।
खोद कठोर भूमि को क्षण में, कर लेता है निज अनुरूप।।15।।
नयरूपी हिमगिरि से निकली, गंगा भक्ती रूप महान्।
मोक्षरूप सागर में जाए, श्रद्धा से करना स्नान।।
मेरे मन में पाप रूप मल, साफ हुआ है अपरम्पार।
संशय का स्थान कहाँ है, हे जिन ! इसमें किसी प्रकार।।16।।
शाश्वत सुख प्रगटाने वाले, हे जिनेन्द्र ! तव करके ध्यान।
मैं भी वही आप हैं जो प्रभु, हो जाता ऐसा श्रद्धान।।
यद्यपि झूठ बुद्धि है फिर भी, अविनश्वर हो तृप्ति महान।
तव अनुकंपा से दोषी जन, इच्छित फल पाते हैं आन।।17।।
दिव्य देशना के सागर में, सप्त भंग मय लहरें नाथ।
सर्व लोक को वेष्टित करता, मिथ्यावाद हटाए साथ।।
मनरूपी मंदार गिरि से, किया गया सागर मंथन।
अमृतपान करे जो मानव, मोक्षमार्ग में होय गमन।।18।।
गहने वस्त्र चाहते हैं वह, जो स्वभाव से रहे कुरूप।
अस्त्र-शस्त्र धारण करते वह, जिनके शत्रु हैं कोई भूप।।
सुन्दर हो सर्वांग आप ना, शत्रू से जीते जाते।
अतः पुष्प वस्त्र आभूषण, अस्त्र-शस्त्र प्रभु न पाते।।19।।
इन्द्र आपकी सेवा करता, कहाँ प्रशंसा का यह कार्य।
नाश करे संसार वास का, होय प्रशंसा का विस्तार।।
भव सिन्धू के तारणहारे, मुक्ति रमा के तुम हो ईश।
अनुग्रह कर्त्ता तीन लोक में, प्रशंसनीय तुम हो जगदीश।।20।।
वचन प्रवृत्ति अन्य रूप है, आप अन्य चेतन चित्वान।
कैसे संगत हो पाएँगे, स्तुति वाक्य मेरे भगवान।।
भक्ति सुधा से पुष्ट हुए जो, मेरे स्तुति के उद्गार।
भव्यों को इच्छित फलदाई, कल्पतरु मानो मनहार।।21।।
नहीं किसी पर हो प्रसन्न तुम, नहीं किसी पर करते रोष।
उदासीन है चित्त आपका, रहित अपेक्षा से निर्दोष।।
आशा के आधीन जगत यह, शत्रु निकटता से हो दूर।
नाथ कहाँ स्वामित्व आप से, मिले हमें ऐसा भरपूर।।22।।

स्वर्ग लोक से आने वाली, श्रेष्ठ अप्सराएँ शुभकार।
नाथ आपका करें स्तवन, सकल द्रव्य के जाननहार।।
मोक्षमार्ग न कुटिल कभी हो, हो सिद्धांत शास्त्र ज्ञाता।
निराबाध वह मुक्ती पथ में, विशद शीघ्र ही बढ़ जाता।।23।।
नाथ चतुष्टय रूप आपका, जिसने भी मन में धारा।
आदरपूर्वक समयसार युत, स्तुति को भी उच्चारा।।
भव्य जीव स्तवन मात्र से, मोक्षमार्ग को करता पूर्ण।
कल्याणक पाँचों पाता है, भव्य जीव अतिशय परिपूर्ण।।24।।
नम्रीभूत हुए इन्द्रों से, पूजित जिनके अपरम्पार।
गुण गाने में न समर्थ हैं, ऋषी मुनी कोई अनगार।।
मंदबुद्धि हम स्तुति करके, आदर का पाते अधिकार।
आतम सुख के लिए कल्पतरु, भक्ति आपकी है शुभकार।।25।।
शब्द शास्त्र के ज्ञाता सारे, वादिराज के आगे हीन।
तार्किक सिंह सभी पड़ जाते, वादिराज के आगे दीन।।
जो प्रसिद्ध कवि रहे लोक में, वादिराज के आगे आन।
हो जाते असहाय पूर्णतः, सज्जनगण जो रहे महान्।।26।।

* * *

प.पू. 108 आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज की पूजन

पुण्य उदय से हे ! गुरुवर, दर्शन तेरे मिल पाते हैं।
श्री गुरुवर के दर्शन करके, हृदय कमल खिल जाते हैंङ्क
गुरु आराध्य हम आराधक, करते उर से अभिवादन।
मम् हृदय कमल में आ तिष्ठो, गुरु करते हैं हम आह्वाननङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वानन्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम् सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

सांसारिक भोगों में फँसकर, ये जीवन वृथा गंवाया है।
रागद्वेष की वैतरणी से, अब तक पार न पाया हैङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, निर्मल जल हम लाए हैं।
भव तापों का नाश करो, भव बंध काटने आये हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोध रूप अग्नि से अब तक, कष्ट बहुत ही पाये हैं।
कष्टों से छुटकारा पाने, गुरु चरणों में आये हैंङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, चंदन घिसकर लाये हैं।
संसार ताप का नाश करो, भव बंध नशाने आये हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय संसारताप विध्वंशनाय चंदनं निर्व.स्वाहा।

चारों गतियों में अनादि से, बार-बार भटकाये हैं।
अक्षय निधि को भूल रहे थे, उसको पाने आये हैंङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, अक्षय अक्षत लाये हैं।
अक्षय पद हो प्राप्त हमें, हम गुरु चरणों में आये हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्व.स्वाहा।

काम बाण की महावेदना, सबको बहुत सताती है।
तृष्णा जितनी शांत करें वह, उतनी बढ़ती जाती हैङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, पुष्प सुगंधित लाये हैं।
काम बाण विध्वंश होय गुरु, पुष्प चढ़ाने आये हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्व.स्वाहा।

काल अनादि से हे गुरुवर ! क्षुधा से बहुत सताये हैं।
खाये बहु मिष्ठान जरा भी, तृप्त नहीं हो पाये हैंङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, नैवेद्य सुसुन्दर लाये हैं।
क्षुधा शांत कर दो गुरु भव की ! क्षुधा मेटने आये हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व.स्वाहा।

मोह तिमिर में फंसकर हमने, निज स्वरूप न पहिचाना।
विषय कषायों में रत रहकर, अंत रहा बस पछतानाङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, दीप जलाकर लाये हैं।
मोह अंध का नाश करो, मम् दीप जलाने आये हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय मोहान्धकार विध्वंशनाय दीपं निर्व.स्वाहा।

अशुभ कर्म ने घेरा हमको, अब तक ऐसा माना था।
पाप कर्म तज पुण्य कर्म को, चाह रहा अपनाना थाङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, धूप जलाने आये हैं।
आठों कर्म नशाने हेतु, गुरु चरणों में आये हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

पिस्ता अरु बादाम सुपाड़ी, इत्यादि फल लाये हैं।
पूजन का फल प्राप्त हमें हो, तुमसा बनने आये हैंङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, भाँति-भाँति फल लाये हैं।
मुक्ति वधु की इच्छा करके, गुरु चरणों में आये हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फलम् निर्व. स्वाहा।

प्रासुक अष्ट द्रव्य हे गुरुवर ! थाल सजाकर लाये हैं।
महाव्रतों को धारण कर लें, मन में भाव बनाये हैंङ्क
विशद सिंधु के श्री चरणों में, अर्घ समर्पित करते हैं।
पद अनर्घ हो प्राप्त हमें गुरु, चरणों में सिर धरते हैंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

जयमाला

दोहा- विशद सिंधु गुरुवर मेरे, वंदन करूँ त्रिकाल।
मन-वच-तन से गुरु की, करते हैं जयमालङ्क

गुरुवर के गुण गाने को, अर्पित है जीवन के क्षण-क्षण।
श्रद्धा सुमन समर्पित हैं, हर्षायें धरती के कण-कणङ्क
छतरपुर के कुपी नगर में, गूँज उठी शहनाई थी।
श्री नाथूराम के घर में अनुपम, बजने लगी बधाई थीङ्क
बचपन में चंचल बालक के, शुभादर्श यूँ उमड़ पड़े।
ब्रह्मचर्य व्रत पाने हेतु, अपने घर से निकल पड़ेङ्क
आठ फरवरी सन् छियानवे को, गुरुवर से संयम पाया।
मोक्ष ज्ञान अन्तर में जागा, मन मयूर अति हर्षायाङ्क
पद आचार्य प्रतिष्ठा का शुभ, दो हजार सन् पाँच रहा।
तेरह फरवरी बसंत पंचमी, बने गुरु आचार्य अहा।।
तुम हो कुंद-कुंद के कुन्दन, सारा जग कुन्दन करते।
निकल पड़े बस इसलिए, भवि जीवों की जड़ता हरतेङ्क
मंद मधुर मुस्कान तुम्हारे, चेहरे पर बिखरी रहती।
तव वाणी अनुपम न्यारी है, करुणा की शुभ धारा बहती हैङ्क
तुममें कोई मोहक मंत्र भरा, या कोई जादू टोना है।
है वेश दिगम्बर मनमोहक अरु, अतिशय रूप सलौना हैङ्क
हैं शब्द नहीं गुण गाने को, गाना भी मेरा अन्जाना।
हम पूजन स्तुति क्या जाने, बस गुरु भक्ति में रम जानाङ्क
गुरु तुम्हें छोड़ न जाएँ कहीं, मन में ये फिर-फिरकर आता।
हम रहें चरण की शरण यहीं, मिल जाये इस जग की साताङ्क
सुख साता को पाकर समता से, सारी ममता का त्याग करें।
श्री देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में, मन-वच-तन अनुराग करेंङ्क
गुरु गुण गाएँ गुण को पाने, औ सर्वदोष का नाश करें।
हम विशद ज्ञान को प्राप्त करें, औ सिद्ध शिला पर वास करेंङ्क

ॐ ह्रूँ प.पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री 18 विशदसागर मुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्ताय पूर्णार्घ्यं निर्व.स्वाहा।

गुरु की महिमा अगम है, कौन करे गुणगान।
मंद बुद्धि के बाल हम, कैसे करें बखानङ्क

इत्याशीर्वादः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्) ***–ब्र. आस्था दीदी***

आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज की आरती

(तर्ज:– माई री माई मुंडेर पर तेरे बोल रहा कागा.....)

जय–जय गुरुवर भक्त पुकारे, आरति मंगल गावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे ।।
गुरुवर के चरणों में नमन्.....4 मुनिवर के.......

ग्राम कुपी में जन्म लिया है, धन्य है इन्दर माता।
नाथूराम जी पिता आपके, छोड़ा जग से नाता।।
सत्य अहिंसा महाव्रती की.....2, महिमा कहीं न जाये।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्.....4 मुनिवर के.......

सूरज सा है तेज आपका, नाम रमेश बताया।
बीता बचपन आयी जवानी, जग से मन अकुलाया।।
जग की माया को लखकर के.....2, मन वैराग्य समावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्.....4 मुनिवर के.......

जैन मुनि की दीक्षा लेकर, करते निज उद्धारा।
विशद सिंधु है नाम आपका, विशद मोक्ष का द्वारा।।
गुरु की भक्ति करने वाला.....2, उभय लोक सुख पावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्.....4 मुनिवर के.......

धन्य है जीवन, धन्य है तन–मन, गुरुवर यहाँ पधारे।
सगे स्वजन सब छोड़ दिये हैं, आतम रहे निहारे।।
आशीर्वाद हमें दो स्वामी.....2, अनुगामी बन जायें।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के... जय...जय।।

रचयिता : श्रीमती इन्दुमती गुप्ता, श्योपुर